सोमदेवसूरिकृत—यशस्तिलक चम्पू में प्रतिपादित दार्शनिक मतों की समीक्षा

—जिनेन्द्र कुमार जैन

भारतीय साहित्य के मध्ययुग में पुराण, कथा, चरित, गद्य, पद्य, नाटक, मुक्तक एवं गद्य-पद्य मिश्रित (चम्पूकाव्य) आदि सभी विधाओं में साहित्य-रचना की गई है। इसलिए यह युग साहित्य निर्माण की दृष्टि से स्वर्णयुग माना गया है। इस युग में साहित्य-सृजन की धारा का प्रवाह मुख्य रूप से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषाओं में मिलता है। जैनाचार्यों ने प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा की तरह संस्कृत भाषा में भी विविध विधाओं में जैन काव्य ग्रन्थों की रचना की है। जिनमें जीवन के विभिन्न अंगों को प्रतिपादित करते हुए तत्कालीन धार्मिक एवं दार्शनिक सामग्री को प्रस्तुत किया गया है।

चम्पूसाहित्य की ओर दृष्टि डालने पर सर्वप्रथम १०वीं शताब्दी के त्रिविक्रमभट्ट (९१५) की कृति 'नलचम्पू' एवं 'मदालसाचम्पू' प्राप्त होती है। और इसी समय से संस्कृत भाषा में जैन चम्पूसाहित्य का श्रीगणेश हुआ, ऐसा माना जाना है। इसके बाद ९५९ ई० में सोमदेवसूरिकृत 'यशस्तिलकचम्पू' महाकाव्य प्राप्त होता है, जो संस्कृत साहित्य की एक अप्रतिम रचना है। किन्तु इस शताब्दी के बाद संस्कृत साहित्य के जैन चम्पू काव्यों में बाढ़ सी आ गई। जिनमें जीवन्धर, गुरुदेव, दयोदय, महावीर, तीर्थंकर, वर्धमान, पुण्यास्रव, भारत, भरतेश्वराभ्युदय, तथा जैनाचार्यविजया आदि प्रमुख चम्पूकाव्य हैं।

विभिन्न युगों की धार्मिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं को साहित्यिक स्वरूप देने की प्रवृत्ति मध्ययुग के कवियों में अधिक देखने को मिलती है। इस दृष्टि से १०वीं शताब्दी में लिखा गया सोमदेवसूरिकृत 'यशस्तिलक चम्पू' महाकाव्य विशेष महत्व का है। प्रस्तुत निबंध में ग्रंथ में प्रतिपादित विभिन्न दार्शनिक मतों की समीक्षा को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

यशोधर का जीवन चरित जैन लेखकों में प्रिय रहा है, इसीलिए सोमदेवसूरि की तरह अपभ्रंश में पुष्पदन्त एवं रइधू आदि कवियों ने यशोधर के जीवन चरित को चित्रित करने के लिए 'जसहरचरिउ' नामक काव्य का प्रणयन किया है।[1] इसी प्रकार उद्योतनसूरि ने 'कुवलयमाला कहा' में प्रभंजन द्वारा

1. डा० देवेन्द्रकुमार जैन, अपभ्रंशभाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ, पृ० 257

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचित यशोधरचरित की सूचना दी है। हरिभद्र के प्राकृत ग्रन्थ 'समराइच्चकहा' में भी यशोधर की कथा आयी है।

इसी तरह वादीराज, वासवसेन, वत्सराज, सकलकीर्ति, सोमकीर्ति, श्रुतसागर, पूर्णदेव, विजयकीर्ति, ज्ञानकीर्ति आदि कवियों ने भी यशोधर चरित्र की रचना की है[1] चूंकि कथा का प्रारम्भ स्वाभाविक ढंग से होता है किन्तु कवि का मुख्य उद्देश्य यशोधर के पूर्व-भवों के दुःखों को, जो उसे आटे के मुर्गे की बलि के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है, प्रस्तुत करना था। कवि ने जैन धर्म एवं दर्शन के सिद्धांतों को प्रतिपादित करते हुए वैदिकी-हिंसा का निरसन एवं अन्य भारतीय दर्शनों की समीक्षात्मक व्याख्या प्रस्तुत की है।

जैन धर्म एवं दर्शन

सोमदेव जैन थे, अतः उन्होंने यशस्तिलक में जैनधर्म एवं दर्शन की विशद् व्याख्या की और उसे सबसे ऊँचा स्थान दिया है। जैन धर्म विरक्ति-मूलक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसीलिए ग्रन्थ के द्वितीय आश्वास में राजा यशोवर्मा को अपने मस्तक के श्वेत बाल को देखने मात्र से ही संसार, शरीर, व भोगों आदि से विरक्ति हो गई। कवि ने इसी प्रसंग में जैन धर्म की बारह अनुप्रेक्षाओं का वर्णन करते हुए इन्हें मोक्षप्राप्ति का साधन बताया है।[2] जैन धर्म के मूलभूत 'अहिंसा' नामक सिद्धांत का वर्णन वैदिकी-हिंसा के निरसन के प्रसंग में किया है।

धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कवि कहता है कि—जिन कार्यों के अनुष्ठान से मनुष्य को स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है, उसे धर्म कहा जाता है। इस धर्म का स्वरूप प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप है। सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का पालन प्रवृत्ति तथा मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय व योग से बचना-निवृत्ति कहलाता है।[3] सच्चा धर्म वही है, जिसमें अधर्म (हिंसा आदि-मिथ्यात्व आदि) नहीं है। सच्चा सुख वही है, जिसमें नरकादि का दुःख नहीं है। सम्यक्ज्ञान वही है, जिसमें अज्ञान नहीं है। तथा सच्ची गति वही है, जहाँ से संसार में पुनरागमन नहीं होता।[4]

आत्मा के स्वरूप को बताते हुए कवि कहता है कि—ज्ञाता, द्रष्टा, महान, सूक्ष्म, कर्त्ता, भोक्ता, स्वशरीर-प्रमाण तथा स्वभाव से ऊपर गमन करने वाले को आत्मा कहा गया है।[5]

मोक्ष के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कवि कहता है कि राग-द्वेष आदि विकारों का क्षय करके जीव का आत्म-स्वरूप को प्राप्त करना ही मोक्ष कहा गया है[6] सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप रत्नत्रय ही मोक्ष का कारण (मार्ग) है। जीव, अजीव आदि पदार्थों के यथार्थ श्रद्धान को सम्यक्दर्शन; अज्ञान संदेह व भ्रांति से रहित ज्ञान को सम्यक्ज्ञान, तथा ज्ञानावरणादिकर्म बन्ध के कारण (मन, वचन व काय) तथा कषाय रूप पाप क्रियाओं के त्याग को सम्यक्चारित्र कहा गया है।[7]

---

1. जैन, गोकुलचन्द्र—यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन पृ० 50-53
2. शास्त्री, सुन्दरलाल—यशस्तिलक चम्पू महाकाव्यं (दीपिका) पूर्वार्द्ध, पृ० 141
3. वही, 5/5, 6/182
4. वही, 7/22/299
5. वही, 6/76, 77/59
6. यशस्तिलक चम्पू महाकाव्य (दीपिका) 6/116/207
7. वही, 5/7,8,9/183

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन दर्शन स्याद्वाद सिद्धांत की दृष्टि से प्रत्येक पदार्थ को अनेक धर्मात्मक मानता है। इस सिद्धांत के अनुसार पदार्थ को नित्य व अनित्य दोनों कहा जा सकता है। द्रव्य की दृष्टि से पदार्थ नित्य है। क्योंकि पदार्थ से द्रव्यता का गुण कभी भी अलग नहीं किया जा सकता। वह सभी अवस्थाओं में द्रव्य ही कहलाता है। किन्तु पर्याय की दृष्टि से पदार्थ अनित्य है। क्योंकि पर्याय उत्पाद, स्थिरशील व विनाश-युक्त है। जैसे घड़े का विनाश हो जाने पर भी वह मिट्टी के रूप द्रव्य ही कहा जाता है, उसकी मात्र पर्याय का ही विनाश होता है।[1]

जैन धर्म एवं दर्शन के विभिन्न सिद्धान्तों के विवेचन के साथ-साथ वैदिक दर्शन के पशु-बलि के हिंसात्मक स्वरूप की, चार्वाक दर्शन की 'तत्व मीमांसा एवं प्रत्यक्ष ही प्रमाण है' की, बौद्ध दर्शन के क्षणिक-वाद, नैरात्म्यवाद, शून्यवाद तथा सांख्य दर्शन के प्रकृति तथा पुरुष के सम्बन्ध की समीक्षा की है। इसके अतिरिक्त योग, वैशेषिक, शैव, मीमांसा आदि दर्शनों की समीक्षा प्राप्त होती है। आत्मा के स्वरूप, जीव की मुक्ति एवं सृष्टि कर्त्ता से सम्बन्धित विभिन्न दर्शनों की मान्यताओं के खण्डन किया गया है।

वैदिक दर्शन

कवि ने वैदिक दर्शन की मान्यताओं की समीक्षा पशु-बलि के सन्दर्भ में की है। यशोधर जैन धर्म में श्रद्धा रखता है और उसकी माता ब्राह्मण धर्म में। इसीलिए ग्रंथ के चतुर्थ आश्वास में कवि ने माता चन्द्रमति द्वारा वैदिकी-हिंसा का समर्थन, तथा राजा यशोधर द्वारा अनेक जैनेतर शास्त्रों के उद्धरणों से जीव-हिंसा व मांस-भक्षण का विरोध प्रस्तुत करवाया गया है। चन्द्रमति माता स्वप्न की शांति का उपाय बताती हुई कहती है कि—'कुलदेवता के लिये समस्त प्राणी वर्गों की बलि करने से स्वप्न की शान्ति हो जाती है। क्योंकि कुलदेवता के लिए प्राणियों की बलि का विधान सदा से प्रचलित हुआ, चला आ रहा है। जो लोक प्रसिद्ध है।[2] इस बात की पुष्टि करती हुई यशोधर की माता कहती है कि—'अतिथि सत्कार के लिए (मधुपर्क), श्राद्धकर्म के लिए (पितृकर्म), अश्वमेध आदि यज्ञ के लिए (यागकर्म), तथा रुद्र आदि की पूजा, इन चार कार्यों में जो पशु का घात करता है वह अपनी आत्मा को तथा बलि किये गये पशुओं को उत्तम गति में ले जाता है। ऐसा मनु नाम के ऋषि ने कहा है।[3]

यशोधर उक्त वैदिकी हिंसा का निरसन करते हुए (अहिंसा धर्म की स्थापना) कहता है कि—हे माता, यद्यपि स्वप्न की शान्ति प्राणियों की बलि से हो भी जाये किन्तु प्राणी-हिंसा के कारण यह कार्य कल्याण-कारक नहीं है।[4] निश्चय से प्राणियों की रक्षा करना क्षत्रिय राजकुमारों का श्रेष्ठ धर्म है। किन्तु वह धर्म प्राणी हिंसा से नष्ट हो जाता है।[5] जिस प्रकार प्राणी अपने शरीर के लिए दुःख नहीं देना चाहते उसी प्रकार दूसरे प्राणियों को भी दुःख नहीं देना चाहिए।[6] अथवा जिस तरह सभी प्राणियों के लिए अपना जीवन प्यारा है उसी प्रकार दूसरे (जीवों) को भी अपना जीवन प्यारा है, इसलिए जीव-हिंसा नहीं करनी चाहिए।[7]

---

1. वही, 6/105/205
2. यशस्तिलक दीपिका, 4/41/50
3. वही, 4/42, 43/50
4. वही, 4/52/53
5. वही, 4/54/53
6. वही, 4/58/54
7. वही, 7/23/299

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पशु बलि से देवता संतुष्ट होते हैं और स्वर्ग की प्राप्ति होती है।' ऐसा वेदों का कथन है, इसलिए कवि वेदों को मूर्ख एवं स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा रचा हुआ मानता है। वह कहता है कि इन्द्रिय-लम्पट एवं भोगों की चित्तवृत्ति के अनुकूल चलने वाले पुरुषों ने अपने विषयों के पोषणार्थ यह वेद रचा है। यदि अश्वमेध यज्ञ आदि में पशुवध करने वालों को स्वर्ग प्राप्त होता है तो वह स्वर्ग कसाइयों को निश्चित रूप से प्राप्त होना चाहिए। इसी तरह यदि यज्ञ में मंत्रोच्चारणपूर्वक होमे गये पशुओं को स्वर्ग प्राप्त होता है ? तो अपने पुत्र आदि कुटुम्ब वर्गों से यज्ञ-विधि क्यों नहीं होती है ?[1]

इसी प्रकार यशोधर आगे कहता है कि—हे माता, यदि प्राणियों का वध करना ही निश्चय से धर्म है तो शिकार की 'पापर्धि' नाम से प्रसिद्धि क्यों है और मांस की 'पिधायआनयन' (ढक कर लाने लायक) नाम से प्रसिद्धि किस प्रकार से है ? इसी प्रकार मांस पकाने वाले को 'गृहादबहिर्वास' (घर से बाहर निवास) एवं मांस को 'रावण शाक' क्यों कहा जाता है ? तथा अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, व एकादशी आदि पर्व दिनों में मांस का त्याग किस प्रकार से किया जाता है ?[2]

यशोधर की उक्त बात सुनकर माता चन्द्रमति पौराणिक उद्धरणों द्वारा जीव-बलि का समर्थन करती है। वह कहती है—अपने प्राणों की रक्षार्थ गौतम ऋषि ने बन्दर को, और विश्वामित्र ने कुत्ते को मार डाला था। इसी प्रकार शिवि, दधीच, बलि तथा बाणासुर एवं अन्य पशु-पक्षियों के घात से अपने कर्म की शान्ति की गई है, वैसे ही तुम्हें भी अपने स्वप्न की शान्ति के लिए बलि द्वारा कुलदेवता की पूजा करनी चाहिए।[3] इसका उत्तर देते हुए यशोधर कहता है कि—हे माता, जिस प्रकार मेरा वध होने पर आपको महान दुःख होगा उसी प्रकार दूसरे प्राणियों के वध से उनकी माताओं को अपार दुःख होगा। अतः दूसरे जीवों के जीव से अपनी रक्षा होती है तो पूर्व में उत्पन्न हुए राजा लोग क्यों मर गये ?[4]

वैदिक दर्शन में पूर्वजों की संतुष्टि के लिए श्राद्ध-कर्म का विधान किया गया है। अतः श्राद्ध-कर्म की समीक्षा करते हुए यशोधर कहता है कि—'ब्राह्मणादि का तर्पण पूर्वजनों को तृप्त करने वाला है।' यह उचित प्रतीत नहीं होता। क्योंकि जब पूर्वज पुण्य कर्म करके मनुष्य-जन्मों में अथवा स्वर्गलोकों में प्राप्त हो चुके हैं, तब उन्हें उन श्राद्ध-पिण्डों की कोई भी अपेक्षा नहीं होनी चाहिए।[5]

चार्वाक दर्शन—आत्मा को मात्र जन्म से मरण पर्यन्त मानने वाले जड़वादी या भौतिकवादी (चार्वाक) दर्शन सुख को ही जीवन का परम लक्ष्य मानता है। इसीलिए यह दर्शन निम्न उक्ति को विशेष महत्व देता है :—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः, भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।

(यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य, ५/७९)

(अर्थात जब तक जिओ, तब तक सुखपूर्वक जीवन यापन करो। क्योंकि (संसार में) कोई भी मृत्यु का अविषय नहीं है। भस्म हुई शान्त देह का पुनरागमन कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता।)

---

1. यशस्तिलक चम्पू महाकाव्यं, (दीपिका, सुन्दरलाल शास्त्री) 4/175, 176/75
2. वही चतुर्थ आश्वास, पृ० 55
3. वही चतुर्थ आश्वास पृ० 72
4. वही 4/71, 72/74
5. वही 4/97/61

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार्वाक दर्शन आत्मा को जन्म से मरण पर्यन्त ही मानता है। तथा शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा का भी अभाव (नाश) हो जाता है, इसीलिए यह दर्शन पुनर्जन्म तथा मोक्ष आदि को स्वीकार नहीं करता। इस सम्बन्ध में उसकी मान्यता है कि—'यदि आत्मा आदि का अस्तित्व स्वतन्त्र रूप से सिद्ध होता तो उसके गुणों आदि पर भी विचार किया जाता, किन्तु जब परलोक में गमन करने वाले आत्म द्रव्य का अभाव है और प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर न होने के कारण परलोक का भी अभाव है। तब मुक्ति किसे होगी ?[1] कवि ने 'तदहर्जस्तनेहातो,' 'रक्षोदृष्टेर्भवस्मृतेः' कहकर जीव को सनातन (शाश्वत) मानते हुए चार्वाक मत के इस सिद्धान्त का खंडन किया है।[2] क्योंकि उसी दिन उत्पन्न हुआ बच्चा पूर्वजन्म सम्बन्धी संस्कार से माता के स्तनों के दूध को पीने में प्रवृत्ति करता है (तदहर्जस्तनेहातो)। इसलिए इस युक्ति से आत्मा तथा उसका पूर्वजन्म सिद्ध होता है ? इसी प्रकार 'रक्षोदृष्टेः' अर्थात् कोई मर कर राक्षस होता हुआ देखा जाता है तथा 'भवस्मृतेः'—किसी को अपने पूर्वजन्म का स्मरण होता है। अतः इन युक्तियों से चार्वाक दर्शन का उक्त मत खण्डित होता है।

चार्वाक दर्शन के केवल 'प्रत्यक्ष ही प्रमाण' की भी कवि ने समीक्षा करते हुए कहा है—यदि आप केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते हो तो आपके माता-पिता के विवाह आदि की सत्ता कैसे सिद्ध होगी? अथवा तुम्हारे वंश में उत्पन्न हुए अदृश्य-पूर्वजों की सत्ता कैसे सिद्ध होगी ? उनकी सिद्धि के लिए यदि आगम-प्रमाण मानते हो तो 'मात्र प्रत्यक्ष ही प्रमाण है' का आपका यह सिद्धान्त खण्डित होता है।[3]

चार्वाक दर्शन जगत में जीव की उत्पत्ति भूतचतुष्टय से मानता है। किन्तु निश्चय से जीव भूतात्मक (पृथ्वी, जल, अग्नि व वायु रूप-जड़) नहीं है। क्योंकि इसमें अचेतन (जड़) पृथ्वी आदि भूतों की अपेक्षा विरुद्ध गुण (चैतन्य-बुद्धि) का संसर्ग पाया जाता है। आत्मा के नष्ट हो जाने पर भूत भी नष्ट हो जायेंगे परन्तु (आत्मा) सत् का नाश नहीं होता। यदि आप विरुद्ध गुण (चेतन गुण) के संसर्ग होने पर भी जीव को भूतात्मक (जड़) मानोगे तो आपके पृथ्वी आदि चारों तत्वों की सिद्धि नहीं होगी।[4]

बौद्ध-दर्शन—जगत को क्षणविध्वंसी मानने वाले बौद्ध-अनुयायी आत्म तत्व की पृथक सत्ता स्वीकार नहीं करते। वह संसार की प्रत्येक वस्तु को अनित्य व क्षणिक मानता है। उसके अनुसार जगत में शाश्वत कुछ भी नहीं है, सब कुछ नश्वर है। इस कथन की पष्टि हेतु बौद्ध मतानुयायी कहते हैं कि जो मरे हुए प्राणी का जन्म देखते हैं और जो ऐसे धर्म को देखते हैं जिसका फल प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं है तथा जो शरीर से पृथक आत्मा को देखते हैं वे मूढमति वाले हैं। अर्थात् पुनर्जन्म तथा धर्म एवं शरीर से भिन्न आत्मा की मान्यता मात्र भ्रामक है।[5] यदि बुद्ध की यह मान्यता है कि शरीर के नष्ट होते ही आत्म द्रव्य भी नष्ट हो जाता है किन्तु जिस प्रकार कस्तूरी के समाप्त हो जाने पर भी उसकी गन्ध बनी रहती है, उसी प्रकार शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा का अस्तित्व रहता है।[6]

बौद्ध दर्शन में जगत को शून्य माना गया है, अर्थात् मात्र शून्य का ही अस्तित्व है। इस सिद्धान्त की समीक्षा करते हुए कहा गया है कि : जब आपने ऐसी प्रतिज्ञा की है कि 'मैं प्रमाण से शून्य तत्व को सिद्ध कर सकता हूँ' तब आपका उक्त सर्व शून्यवाद सिद्धान्त कहाँ रहता है।[7] चूंकि 'मैं' प्रतिज्ञापूर्वक

1. यशस्तिलक चम्पू महाकाव्यं (दीपिका) उत्तरार्द्ध पृ० 185
2. वही, 6/32/190 एवं 5/113/163
3. वही, उत्तरार्द्ध, पृ० 274
4. यशस्तिलक चम्पू महाकाव्यं (दीपिका) 5/119/164
5. वही, 5/78/156
6. वही, 5/110/162
7. वही, 6/54/191

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शून्य तत्व को सिद्ध करेगा इसलिए 'मैं' की सत्ता स्वयं सिद्ध ही है। इसलिए बौद्ध दर्शन की स्वयं की उक्ति से ही उनका शून्यत्ववाद खण्डित हो जाता है। जब यह कहा जाता है कि 'वही मैं हूँ, वही (पूर्व दृष्ट) पात्र हैं तथा वही दाताओं के गृह हैं' इस प्रकार के वाक्य से भी उनका शून्यवाद समाप्त हो जाता है। बौद्ध दर्शन क्षणिकवाद का समर्थक है। एक ओर तो वह वस्तु को क्षणिक मानता है, और दूसरी ओर कहता है कि 'जो मैं बाल्यावस्था में था, वही मैं युवावस्था में हूँ' इस प्रकार के एकत्व मानने से बौद्ध दर्शन का यह सिद्धान्त खण्डित हो जाता है।[1]

इसी प्रकार मुक्ति के विषय में कवि कहता है कि जब बौद्धदर्शन वस्तु को प्रतिक्षण विनाशशील मानता है तब बन्ध व मोक्ष का सर्वथा अभाव हो जायेगा।[2] क्योंकि जिस प्रथम क्षण में आत्मा का कर्म बन्ध होता है, दूसरे ही क्षण उस आत्मा का विनाश हो जायेगा। ऐसी स्थिति में मुक्ति किसकी होगी? इस दृष्टि से उनका यह मानना कि सर्व क्षणिकं-क्षणिके, दुखं-दुखं, स्वलक्षण-स्वलक्षणं एवं शून्यं-शून्यं रूप चतुष्टय भावना से मुक्ति होती है—युक्तियुक्त नहीं है।[3]

सांख्य दर्शन—सांख्य दर्शन में आत्मा को पुरुष कहा गया है तथा जगत को प्रकृति शब्द से अभिहित किया गया है। उसके अनुसार यह आत्मा अकर्त्ता, निर्गुण, शुद्ध, नित्य, सर्वभूत, निष्क्रिय, अमूर्तिक, चेतन तथा भोक्ता है।[4] इसी तरह प्रकृति को जड़, अचेतन, एक, सक्रिय तथा त्रिगुणातीत कहा गया है। यहाँ कवि आपत्ति करता है कि यदि बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख, प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि प्रकृति के धर्म हैं तो आत्म तत्व की मान्यता का क्या प्रयोजन? चूंकि आत्मा चेतन है, इसलिए बन्ध, मोक्ष, सुख आदि आत्मा के धर्म होने चाहिए, न कि जड़ रूप प्रकृति के।[5] इसी प्रकार यदि प्रकृति को सक्रिय एवं पुरुष को निष्क्रिय मानते हो तो वह भोक्ता कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता और जब आप आत्मा (पुरुष) को शुद्ध व निर्गुण मानते हो तो वह शरीर के साथ संयोग (सम्बन्ध) रखने वाला कैसे हो सकता है[6] और जो (प्रकृति) जड़ रूप है वह सक्रिय एवं जो (पुरुष) चेतन है वह निष्क्रिय कैसे हो सकता है।[7]

मुक्ति के विषय में सांख्य दर्शन की मान्यता है कि : समस्त इन्द्रिय-वृत्तियों को शान्त करने वाला प्रकृति, बुद्धि, मन, व अहंकार का विरह (सम्बन्ध-विच्छेद) हो जाने से पुरुष (आत्मा) का अपने चैतन्य रूप में स्थित होना ही मुक्ति है।[8] इस मान्यता का खण्डन करते हुए कवि कहता है कि—जब प्रकृति तथा पुरुष नित्य व व्यापक (समस्त मूर्तिमान पदार्थों के साथ संयोग रखने वाले) हैं तब उन दोनों का विरह (सम्बन्ध-विच्छेद) कैसे हो सकता है।[9] क्योंकि नित्य व व्यापक पदार्थों का किसी काल व किसी देश में विरह नहीं हो सकता। इसी तरह यदि आप पुरुष को नित्य[10] मानते हो तो उसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता, फलस्वरूप कर्म-बद्ध आत्मा सदैव कर्म-बद्ध ही रहेगा। तथा आत्मा का कर्मों से बन्ध ही नहीं होगा। चूंकि प्रत्येक वस्तु द्रव्य की अपेक्षा से नित्य व पर्याय की दृष्टि से अनित्य होती है इसलिए पुरुष को मात्र नित्य मानता युक्ति-संगत नहीं है।

---

1. वही, 8/126/409
2. यशस्तिलक चम्पू महाकाव्यं (दीपिका) 6/106/205
3. वही उत्तरार्द्ध पृ० 184
4. वही 5/62/152
5. वही 5/85/157
6. वही 5/86, 87/158
7. वही 8/121/407
8. वही (उत्तरार्द्ध) पृ० 187
9. वही 6/28/189
10. वही 6/106/205

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य धर्म एवं दर्शनों की समीक्षा

कवि ने अपने ग्रंथ में भारतीय दर्शनों की समीक्षात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए अन्य दर्शनों पर भी विभिन्न प्रमाणों सहित अपनी लेखनी चलायी है। वैशेषिक दर्शन की मोक्ष विषयक मान्यता के विषय में कहा गया है कि : द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव इन सात पदार्थों का सदृश धर्म व वैधर्म्य मूलक शास्त्र सम्बन्धी तत्व ज्ञान से मोक्ष होता है।[1] जिस प्रकार भूखे मनुष्य की इच्छा मात्र से ऊमर-फल नहीं पक जाते बल्कि प्रयत्नपूर्वक पकते हैं उसी प्रकार मात्र तत्वों के श्रद्धान से मोक्ष-प्राप्ति नहीं होती, इसके लिए सम्यक् चारित्र रूप प्रयत्न साध्य है।[2]

समस्त पीने योग्य, न पीने योग्य, खाने योग्य, न खाने योग्य, पदार्थों के खाने-पीने में निःशंकित चित्तवृत्तिपूर्वक प्रवृत्ति करने से कोलमतानुसार मुक्ति-प्राप्त होती है[3] यदि उक्त कथन सत्य मान लिया जाये तो ठगों को व वधिकों को सबसे पहले मुक्ति होनी चाहिए, कौलमार्ग के अनुयायियों की बाद में। क्योंकि ठग व वधिक लोग कौलाचार्य की अपेक्षा पाप प्रवृत्ति में विशेष निडर होते हैं।[4]

इसी तरह कवि ने हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं की ईश्वरीय मान्यता को मिथ्या बताते हुए कहा है कि—ब्रह्मा, विष्णु, महेश व सूर्य आदि देवता राग-द्वेष आदि दोषों से युक्त होने के कारण आप्त (ईश्वर) नहीं कहे जा सकते। क्योंकि ब्रह्मा तिलात्मा में, विष्णु लक्ष्मी में, तथा महेश पार्वती में आसक्त रहते हैं। जो राग-द्वेष का कारण है।[5] सूर्य की पूजा-निमित्त जल चढ़ाना, ग्रहण के समय तालाब व समुद्र में धर्म समझकर स्नान करना, वृक्ष, पर्वत, गाय तथा पर धर्म के शास्त्रों की पूजा करना आदि लोक में प्रचलित अंधविश्वासों को कवि ने मिथ्या धारणायें बताया है तथा जिनके पालन का भी निषेध किया गया है।[6]

गद्यचिंतामणि, धर्मपरीक्षा, चन्द्रप्रभचरितं, शान्तिनाथ चरित, नीतिवाक्यामृतं, सुभाषितरत्न-संदोह, धर्मशर्माभ्युदय, तिलकमंजरी आदि समकालीन प्रतिनिधि जैन संस्कृत ग्रंथ हैं जिनमें जैनधर्म एवं दर्शन के सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए परमत खण्डन की परम्परा देखने को मिलती है। इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत ग्रंथ में विभिन्न धार्मिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है तथा विभिन्न प्रमाणों सहित अन्य दर्शन की मान्यताओं का खण्डन करते हुए सच्चे धर्म तथा सदाचार के पथ को प्रशस्त किया है।

卐 • 卐

1. यशस्तिलक चम्पू महाकाव्यं (दीपिका), उत्तरार्द्ध पृ० 183
2. वही 6/20/188
3. वही उत्तरार्द्ध पृ० 184
4. वही (उत्तरार्द्ध) पृ० 189
5. वही 6/63, 65/197, 198
6. वही 6/139, 142/211

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org